DSSSB TGT & PGT
दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड
ROJGAR ANKIT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अंक)
Part -2
LIVE
30-07-2024 05:00 PM

अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अंक)

14.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अङ्क) - श्लोक 1-11

मूलपाठ –

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ ।)

अनसूया- हला प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलाऽनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयम्, तथाप्येतावच्चिन्तनीयम् अनसूया अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्यर्षिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरसमागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति।

प्रियंवदा - विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति । तात इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति।

अनसूया - यथाऽहं पश्यामि, तथा तस्यानुमतं

प्रियंवदा - कथमिव ?

अनुवाद - (तदनन्तर फूलों को चुनने का अभिनय करती हुई दो सखियाँ प्रवेश करती हैं।)

अनसूया - सखी प्रियंवदा, यद्यपि गान्धर्व विधि से शकुन्तला का विवाह होकर कल्याण हो गया है तथा उसने अपने अनुकूल पति को प्राप्त कर लिया है, इसलिए मेरा हृदय प्रसन्न है, फिर भी यह बात तो सोचने योग्य है।

प्रियंवदा - वह क्या?

अनसूया - अब वे राजर्षि यज्ञ को समाप्त करके, ऋषियों से विदा लेकर अपने नगर में प्रवेश करके अन्त:पुर में पहुँच गए हैं। अब वह यहाँ की बातों को स्मरण करेंगे या नहीं।

प्रियंवदा - निश्चिन्त रहो। उस प्रकार की विशेष आकृतियाँ गुणों की विरोधी नहीं होतीं किन्तु पिता कण्व इस वृतान्त को सुनकर क्या सोचेंगे?

अनसूया जैसा मैं समझती हूँ, यह विवाह उन्हें स्वीकार होगा।

प्रियंवदा - कैसे?

व्याख्या - अनसूया और प्रियंवदा के संवाद से सूचित होता है कि दुष्यन्त एवं शकुन्तला का विवाह सम्पन्न हो गया तथा दोनों ने कुछ समय पति-पत्नी के रूप में व्यतीत किया। यज्ञ कार्य के समाप्त हो जाने पर दुष्यन्त अपनी राजधानी को लौट गए। काफी समय व्यतीत हो जाने पर भी उन्होंने शकुन्तला को बुलाने के लिए कोई सन्देश नहीं भेजा। पिता कण्व भी सोमतीर्थ से नहीं आये।

अनसूया को चिन्ता है कि दुष्यन्त को यहाँ का वृत्तान्त याद रहेगा या नहीं। प्रियंवदा को चिन्ता है कि पिता कण्व इस वृत्तान्त को सुनकर न जाने क्या सोचेंगे? प्रियंवदा कहती है कि दुष्यन्त की जैसी सौम्य एवं तेजस्विनी आकृति

है, उसी के अनुसार उसके आन्तरिक गुण होने चाहिए। दुष्यन्त शकुन्तला को धोखा देगा, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए।

शब्दार्थ - कुसुमावचयम् = फूलों को चुनना, विस्त्रब्धा भव = चिन्ता न करो, गुणविरोधिनः = गुणों से विरोध करने वाले, गान्धर्वेण - गान्धर्व विवाह की विधि से, निर्वृत्तम् = सन्तुष्ट ।

मूलपाठ - अनसूया - गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव संपादयति, नन्वप्रयासेन कृतार्थौ गुरुजनः।

प्रियंवदा - (पुष्पभाजनं विलोक्य) सखि, अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि।

अनसूया - ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया।

(इति तदेव कर्माभिनयतः)

(नेपथ्ये)

अयमहं भोः।

अनसूया (कर्ण दत्त्वा) सखि, अतिथीनामिव

प्रियंवदा ननूटजसन्निहिता शकुन्तला ।

अनसूया - अद्य पुनर्हृदयेनासन्निहिता। अलमेतावद्भिः कुसुमैः।

(इति प्रस्थिते)

(नेपथ्ये)

आः, अतिथिपरिभाविनि,
विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ।।1।।

अन्वयः - अनन्यमानसा यं विचिन्तयन्ती उपस्थितं तपोधनं वेत्सि न माम् उपस्थितम् । स्मरिष्यति त्वां न स बोधितः अपि सन् त्वां न स्मरिष्यति ।

अनुवाद-

अनसूया गुणशाली पुरुष को कन्या देना है, यह उनका प्रथम संकल्प था। उस संकल्प को यदि भाग्य ही सम्पादित कर देता है तो बिना प्रयास के ही गुरुजन कृतार्थ हो गए।

प्रियंवदा - (फूलों के पात्र को देखकर) सखि, पूजन कार्य के लिए पर्याप्त फूल चुन लिए हैं।

अनसूया - किन्तु सखी शकुन्तला के सौभाग्य देवता का पूजन भी तो करना है।

प्रियंवदा - ठीक है।

(फिर उसी कार्य का अभिनय करती है)

(नेपथ्य में)

हे! यह मैं आया हूँ। यहाँ कौन है?

अनसूया (कान देकर) सखि, जैसे किसी अतिथि ने पुकारा है।

प्रियंवदा कुटी में शकुन्तला उपस्थित ही है। (मन में) पुनः आज हृदय से उपस्थित नहीं है।

अनसूया अच्छा, इतने फूल पर्याप्त हैं। (यह कहकर दोनों चल देती हैं।) अहा, अतिथि का तिरस्कार करने वाली !

अनन्यमन से जिसका ध्यान करती हुई तू अतिथि रूप में उपस्थित मुझ तपस्वी को नहीं देख रही है, वह व्यक्ति स्मरण कराया जाता हुआ भी तुमको उसी प्रकार स्मरण नहीं करेगा, जैसे कि पागल व्यक्ति पहले कही हुई बात को समरण नहीं करता। ।1।।

व्याख्या-

प्रियंवदा चिन्ता करती है कि पता नहीं पिता कण्व इस विवाह के विषय में क्या सोचेंगे? अनसूया कहती है कि मेरी समझ से पिता को यह विवाह स्वीकार होगा क्योंकि गुणवान् व्यक्ति से शकुन्तला का विवाह करना उनका संकल्प था। जिसे शकुन्तला ने अपने भाग्य से प्राप्त कर लिया है। शकुन्तला तो दुष्यन्त के ध्यान में निमग्न है और उसको बाह्य संसार का बोध नहीं है परन्तु उसकी दोनों सखियाँ उसके सौभाग्य के लिए प्रतिदिन पूजा करती हैं, जिससे कि उसका अनिष्ट न हो।

शब्दार्थ - प्रथमः संकल्पः = मुख्य निश्चय या विचार, अनायासेन - प्रयास के, सौभाग्यदेवता ईष्ट देव, युज्यते = तुम्हारी बात ठीक है, निवेदन, प्रमत्तः - उन्मत्त । बिना किसी निवेदितम् =

मूलपाठ

प्रियंवदा - हा धिक्, हा धिक् । अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला । (पुरोऽवलोक्य) न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः

अनसूया - कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। गच्छ। पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्धोदकमुपकल्पयामि।

प्रियंवदा तथा। (तह।) (इति निष्क्रान्ता ।)

अनसूया (पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अहो, आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्।

(प्रविश्य)

प्रियंवदा सखि प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति ? किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः।

अनसूया - (सस्मितम्) तस्मिन् बह्वेतदपि । कथय ।

प्रियवंदा यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया। भगवन्, प्रथम इति प्रेक्ष्याविज्ञाततत्तप:प्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षयितव्य इति।

अनसूया ततस्तत: । (तदो तदो।)

अनुवाद-

प्रियंवदा हाय! हाय! अनर्थ हो गया। किसी आदरणीय व्यक्ति के प्रति शून्य हृदय शकुन्तला ने अपराध कर दिया। (सामने देखकर) और किसी साधारण व्यक्ति के प्रति नहीं। यह सरलता से क्रुद्ध हो जाने वाले दुर्वासा ऋषि हैं। इस प्रकार शाप देकर वेग के बल से उछलती हुई और न रोकी जा सकने वाली गति से लौट रहे हैं।

अनसूया अग्नि के अतिरिक्त और कौन वस्तु जलाने में समर्थ होगी? जा और पैरों में प्रणाम करके इनको लौटा ला, तब तक मैं पूजा का सामान तैयार करती हूँ।

प्रियंवदा अच्छा। (यह कहकर निकल गयी)

अनसूया (एक पग के बाद फिसलने का अभिनय करके) ओह, घबराहट से फिसलती हुई गति वाले मेरे हाथ से पुष्पों का पात्र गिर गया। (यह कहकर फूलों को उठाने का अभिनय करती है।)

(प्रवेश करके)

प्रियंवदा - सखी! स्वभाव से टेढ़े वह दुर्वासा किसकी विनती स्वीकार करते हैं? तब भी मैंने उनको कुछ दयालु कर लिया।

अनसूया - (मुस्कुराकर) उनके लिए यह भी बहुत है। बताओ।

प्रियंवदा - जब उन्होंने लौटना नहीं चाहा तो मैंने निवेदन किया- भगवन् ! आपके तप के प्रभाव को न जानने वाली आपकी पुत्री का यह पहला अपराध है, यह समझकर आप इस एक अपराध को क्षमा कर दीजिए।

अनसूया - उसके पश्चात् ।

व्याख्या- दुर्वासा ऋषि अतिथि के रूप में आश्रम के द्वार पर उपस्थित हुए और उन्होंने शकुन्तला को पुकारा। परन्तु दुष्यन्त के ध्यान में मग्न शकुन्तला ने ऋषि की पुकार को नहीं सुना। स्वभाव से क्रोधी होने के कारण वह शकुन्तला को शाप देकर चले गए। भारतीय साहित्य में दुर्वासा ऋषि क्रुद्ध होने के लिए प्रसिद्ध हैं। थोड़े से कारण से भी वे क्रुद्ध हो जाते हैं। दुर्वासा को देखकर सखियाँ घबरा जाती हैं। दुर्वासा ऋषि अग्नि के सदृश जलाने वाले क्रोधी स्वभाव के हैं। वे किसी का अनुनय कठिनाई से ही स्वीकार करते थे। फिर भी प्रियंवदा उनसे अनुनय-विनय करती है तथा शकुन्तला के अपराध को क्षमा करने हेतु विनय करती है।

शब्दार्थ - अप्रियमेव = अशुभ, शून्यहृदया = अन्यमनस्क, अर्धोदकम् = अर्घ और जल, अग्रहस्तात् = हाथ से, प्रकृति वक्रः = स्वभाव से कुटिल, सानुक्रोशः = दया से युक्त।

मूलपाठ

प्रियंवदा ततो न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति, किं त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाण एवान्तर्हितः।

अनसूया शक्यमिदानीमाश्वासितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम् । तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति।

प्रियंवदा सखि, एहि । देवकार्यं तावद् निर्वर्तयावः।

(इति परिक्रामतः ।)

अनसूया - प्रियंवदे, द्वयोरेव नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी।

प्रियंवदा - को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति

(इत्युभे निष्क्रान्ते)

विष्कम्भकः ।

अनुवाद-

प्रियंवदा - तो मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता किन्तु पहचान का आभूषण दिखाने से शाप समाप्त हो जाएगा, यह कहकर स्वयं अन्तर्धान हो गए।

अनसूया - अब आश्वासन रखा जा सकता है। प्रस्थान करते हुए उस राजर्षि ने अपने नाम से अंकित अंगूठी शकुन्तला की अंगुली में यह कहकर पहना दी थी कि इसे स्मरण रखना। उस अंगूठी के द्वारा इस शाप का उपाय शकुन्तला के अधीन रहेगा।

प्रियंवदा - सखि, आओ। देवता की पूजा के कार्य को निबटा लें। (यह कहकर घूमती हैं।)

प्रियंवदा - (देखकर) अनसूये, देखो। बांयें हाथ पर मुख को रखे हुए प्रिय सखी चित्रलिखित-सी प्रतीत होती है। पति के ध्यान में लगी हुई यह स्वयं को भी नहीं पहचानती, तो फिर अतिथि का तो कहना ही क्या?

अनसूया - प्रियंवदे, निश्चय ही यह वृत्तान्त हम दोनों के मुख में रहे। स्वभाव से - कोमल प्रिय सखी की निश्चय से रक्षा करनी चाहिए।

प्रियंवदा - कौन व्यक्ति नवमालिका को गरम जल से सींचता है? - (यह कहकर दोनों निकल गयीं)

विष्कम्भक समाप्त।

व्याख्या- दुर्वासा ऋषि शाप के प्रभाव को कम करने का उपाय बताते हैं कि कोई अभिज्ञान चिन्ह दिखाने से शकुन्तला को दुष्यन्त पहचानने में सक्षम होगा। दुर्वासा ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गए। कहने का आशय यह है कि वे योग-शक्ति से अदृश्य हो गए। अनसूया प्रियंवदा से यह वृत्तान्त गोपनीय रखने तथा शकुन्तला को न बताने के लिए कहती है इस पर प्रियंवदा कहती है कि दुर्वासा के शाप को बता कर मैं शकुन्तला को पीड़ित नहीं करूँगी जिस प्रकार नवमालिका को गरम जल से सींचने पर वह मुरझा जाती है,

उसी प्रकार शकुन्तला को यदि इस शाप का वृत्तान्त विदित हो गया तो वह भी अत्यधिक पीड़ित होगी। शकुन्तला नवमालिका के पुष्प के समान है तथा दुर्वासा का शाप गरम जल के समान जला देने वाला है।

शब्दार्थ - **अन्तर्हितः** = अन्तर्धान हो गए, **संप्रस्थितेन** = प्रस्थान करते समय, **स्मरणीयमिति** = स्मृतिचिन्ह के रूप में, **पिनद्धम्** = पहनाया, **प्रकृतिपेलवा** = स्वभाव से कोमल।

मूलपाठ -

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः)

शिष्यः - वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन। प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति । (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त, प्रभातम् । तथाहि-

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ।।2।।

अन्वयः - एकतः ओषधीनां पतिः अस्तशिखरं याति, एकतः अरुणपुरःसरः अर्कः आविष्कृतः, लोकः तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां, आत्मदशान्तरेषु नियम्यत इव।

शिष्य - (तदनन्तर सोकर उठे हुए कण्व के शिष्य का प्रवेश) प्रवास से लौटे हुए आदरणीय काश्यप ने मुझको समय देखने के लिए आदेश दिया है। प्रकाश निकल आया है। तो देखता हूँ कि रात कितनी बची है? (घूमकर और देखकर) अरे, प्रातःकाल हो गया है। क्योंकि -

एक ओर औषधियों का स्वामी चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है, दूसरी ओर अरुण को आगे किए हुए सूर्य उदय हो रहा है। यह संसार दो तेजों के एक साथ अस्त और उदय के द्वारा मानो अपने दशा विशेषों में नियन्त्रित हो रहा है। ।2।।

व्याख्या- प्रस्तुत पद्य द्वारा कवि यह अभिव्यक्त करना चाहता है कि प्रातःकाल होने पर एक ओर तो चन्द्रमा अस्त हो रहा है और दूसरी ओर सूर्य उदय हो रहा है। ये दोनों घटनाएँ एक साथ हो रहीं हैं। जब इतने तेजस्वी पदार्थों में भी अवनति एवं उन्नति का स्वाभाविक चक्र चलता रहता है, तब संसार में विभिन्न व्यक्तियों में सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि की विभिन्न अवस्थाएँ आती रहती हैं। मनुष्य कभी गिरता है, कभी उठता है, कभी वह दुःख पाता है, कभी वह सुख पाता है, कभी उसकी अवनति होती है और कभी उन्नति। इस श्लोक से यह अर्थ भी अभिव्यंजित होता है कि शकुन्तला पर विपत्ति आयेगी, परन्तु कुछ समय बाद यह विपत्ति दूर होकर वह उन्नत अवस्था को भी प्राप्त करेगी।।2 ||

शब्दार्थ - वेला = समय, उपवावृत्तेन - लौटे हुए, अस्तशिखरम् = अस्त हो रहा है, अर्क = सूर्य, लोक = संसार।

मूलपाठ -

अपि च -

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा ।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि । ।3 ।।

अन्वयः - शशिनि अन्तर्हिते सा एव कुमुद्वती संस्मरणीशोभा मे दृष्टिं न नन्दयति। नूनम् इष्टप्रवासजनितानि अबलाजनस्य दुःखानि नूनम् अतिमात्रं सुदुःसहानि ।

अनुवाद- और भी-

चन्द्रमा के छिप जाने पर वही कुमुदिनी स्मरणीय शोभावाली होने से मेरी दृष्टि को आनन्दित नहीं करती है। अबलाओं के प्रिय प्रवास से उत्पन्न हुए दुःख निश्चय से अत्यधिक दुःसह होते हैं।।3।।

व्याख्या- कवि प्रसिद्धि है कि चन्द्रमा के उदय होने पर कुमुद व सूर्य के उदय होने पर कमल खिलते हैं तथा इनके अस्त होने पर ये बन्द हो जाते हैं। । इस श्लोक से दुष्यन्त और शकुन्तला से सम्बन्धित घटनाओं की भी अभिव्यंजना होती है। चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्त के चले जाने पर और शकुन्तला का समाचार न लेने से उसकी अवस्था सोचनीय हो गयी है।

शब्दार्थ - अन्तर्हिते अवश्य ही, न नन्दयति छिपने पर, कुमुद्रद्वती कुमुदिनी, अबला = स्त्री, नूनम् = आह्लादित नहीं करती है।

मूलपाठ

(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

अनसूया - यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमाचरितम्। (जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स जणस्स एदं ण विदिअं तह वि तेण रण्णा सउन्दलाए अणज्जं आअरिदं।)

शिष्यः - यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः)

अनसूया - प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्यामि। न मे उचितेष्वपि निजकरणीयेषु हस्तपादं प्रसरति । काम इदानीं सकामो भवतु, येनासत्यसन्धे जने शुद्धहृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वाससः शाप एष विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावतः कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति । तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः । दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्। ननु सखीगामी दोष इति व्यवसिताऽपि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम् । इत्थंगतेऽस्माभिः किं करणीयम् ।

अनुवाद- (पर्दा हटाकर प्रविष्ट होकर)

अनसूया - सांसारिक विषय-भोगों से विमुख व्यक्ति को ये सब बातें यद्यपि विदित नहीं हैं तथापि उस राजा ने शकुन्तला के प्रति अनार्य आचरण किया है।

शिष्य - तो हवन करने का समय उपस्थित हो गया है। यह बात गुरु से निवेदन करूँ। (यह कहकर निकल जाता है।या है।

अनसूया - जागकर भी क्या करूँगी? अभ्यस्त दैनिक कार्यों में भी मेरे हाथ-पैर नहीं चल रहे हैं। कामदेव की इच्छा पूर्ण हो। जिसने असत्य प्रतिज्ञा वाले व्यक्ति के प्रति शुद्धहृदया शकुन्तला का प्रेम कराया है अथवा दुर्वासा का शाप ही यह विकार उत्पन्न कर रहा है। नहीं तो कैसे वह राजर्षि इस प्रकार की मीठी बातें करके इतने दिनों तक एक पत्र भी न भेजता। अतः यहाँ से वह पहचान की अँगूठी उसके पास भेजते हैं। कष्ट सहन करने वाले तपस्वियों में से किससे प्रार्थना करें?

हमारी सखी पर दोष आयेगा। इसलिए मैं निश्चय करने पर भी प्रवास से लौटे हुए पिता काश्यप से यह निवेदन करने में समर्थ नहीं हो रही हूँ कि शकुन्तला का दुष्यन्त से विवाह हो गया है और वह गर्भवती है। इस प्रकार की अवस्था होने पर हमें क्या करना चाहिए?

शब्दार्थ - गुरवे = गुरु से, विदितं = जानना, लेखमात्रमपि = पत्रमात्र भी, विसृजति = भेजना, दुःखशीले = दुःख सहन करने वाले, परिणीताम् = विवाहिता, आपन्नसत्त्वाम् = गर्भिणी।

(प्रविश्य)

प्रियंवदा - (सहर्षम्) सखि, त्वरस्व त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम् । (सहि, तुवर तुवर सउन्दलाए पत्थानकोदुअं णिव्वत्तिदुं ।)

अनसूया - सखि, कथमेतत् ? (सहि, कहं एदं ।)

प्रियंवदा - शृणु। इदानीं सुखशयितप्रच्छिका शकुन्तलासकाशं गताऽस्मि । (सुणाहि। दाणि सुहसइदपुच्छिआ सउन्दलासआसं गदम्हि ।)

अनसूया - ततस्ततः । (तदो तदो।)

प्रियंवदा - तावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम् । दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से, सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता । अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति ।

(दाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्सजिअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणन्दिदं । दिट्ठिआ धूमाउलिददिट्ठिणो वि जअमाणस्स पावए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे, सुसिस्सपरिदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जासि संवुत्ता। अज्ज एव्व इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति।)

अनसूया - अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः ? (अह केण सूइदो तादकस्सवस्स वुत्तन्तो।)

प्रियंवदा - अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या । (अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छन्दोमईआ वाणिआए।)

अनुवाद- (प्रवेश करके)

प्रियंवदा - (प्रसन्नता से) सखि, शकुन्तला की विदाई ई के के समय समय किये किये जाने जाने वाले मंगल कार्यों के लिए शीघ्रता करो।

अनसूया - सखि, यह कैसे हुआ?

प्रियंवदा - सुनो। तुम सुखपूर्वक सोई थी, यह पूछने के लिए मैं अभी शकुन्तला के पास गयी थी। तब लज्जा से झुके हुए मुख वाली इस शकुन्तला का आलिंगन करके पिता काश्यप ने अभिनन्दन किया। धुएँ से व्याकुल दृष्टि वाले यजमान की आहुति भाग्य से अग्नि में ही गिरी है।

पुत्रि ! शिष्य को दी गयी विद्या के समान तुम अशोचनीय हो गयी हो। ऋषियों से रक्षा की गयी तुमको मैं आज पति के पास विदा करता हूँ।

अनसूया - और तात काश्यप को यह सूचना किसने दी?

प्रियंवदा - यज्ञशाला में प्रविष्ट हुए उनके शरीर रहित छन्दोमय वाणी ने।

शब्दार्थ –

प्रस्थानकौतुक = प्रस्थान के समय किए जाने वाले मांगलिक कार्य, **लज्जावनतमुखीम्** = लज्जा से नीचे मुँह की हुई, **दिष्ट्या** = सौभाग्य से, **धूमाकुलेन** = धुएँ से व्याकुल, पावक अग्नि, अद्यैव आज ही।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - **सुखशयितं** = सुखेन सहितम् (सुप्सुपा समास), **लज्जावनतमुखम्** = लज्जया अवनतमुखीम् (तत्पुरुष समास), धूमाकुलितदृष्टिः **धूमेन** = आकुलिता दृष्टिः यस्य तस्य (बहुव्रीहि समास)।

मूलपाठ –

प्रियंवदा-

(संस्कृतमाश्रित्य)

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ।।4।।

अन्वयः- ब्रह्मन् दुष्यन्तेन आहितं तेजः भुवः भूतये दधानां तनयाम् अग्निगर्भां शमीमिव अवेहि।

अनुवाद (संस्कृत का आश्रय लेकर)

हे ब्रह्मन् ! अपनी पुत्री को संसार का कल्याण करने के लिए दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज को धारण करने वाली, अतः अग्नि को गर्भ में धारण करने वाली शमी के समान समझो ।।4।।

व्याख्या- कन्या को पतिगृह के लिए विदा के समय किए जाने वाले अनेक मंगलकारी कार्यों को प्रस्थानकौतुक कहते हैं। कण्व कहते हैं कि जैसे यज्ञ की अग्नि से धुआँ उठने के कारण यजमान की आँखों से दिखाई नहीं देता, परन्तु भाग्य से उसके द्वारा दी जाती हुई आहुति अग्नि में ही गिरती है, उसी प्रकार इस विवाह रूपी यज्ञ के यजमान कण्व के यज्ञ की आहुति रूप शकुन्तला उसके योग्य वर दुष्यन्त को, जो कि अग्नि का रूप है,

प्राप्त हुई है तथा जैसे उत्तम शिष्य को दी गयी विद्या कल्याणकारी होती है परन्तु कुत्सित शिष्य को देने पर उसका शोचनीय परिणाम होता है इसी प्रकार योग्य वर को प्राप्त करके शकुन्तला भी अब शोक के योग्य नहीं है। कण्व ऋषि महान् तपस्वी थे। यज्ञशाला में जब उन्होंने प्रवेश किया तो आकाशवाणी ने उनको शकुन्तला की अवस्था की सूचना दी।

शब्दार्थ तेजः = तेज या वीर्य, भूतये = पृथ्वी के, भुवः = कल्याण, अवेहि = जानो, शमीमिव = शमी के बृक्ष के समान ।